सामाजिक न्याय–पिछड़े वर्गों की भूमिका

चन्द्रजीत यादव

'सामाजिक न्याय' की चर्चा पिछले तीन दशकों से हमारे देश में ही नहीं बल्कि अंर्त्राष्ट्रीय मंचों पर भी काफी हुई है। संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यक्रमों में, विश्व श्रम संगठन में, गुट निरपेक्ष आंदोलन के प्रस्तावों में, साऊथ-साऊथ आयोग में और सार्क के कार्यक्रमों में भी इसका उल्लेख बार-बार हुआ है। हमारे देश में जिस प्रकार साठ व सत्तर के दशकों में समाजवाद की काफी चर्चा हुई उसी प्रकार आज 'सामाजिक न्याय' भी चर्चा का विषय है।

भारत के संविधान में हम अपने देश की जनता के प्रति वचनबद्ध हैं कि इस देश के हर नागरिक को सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय, सामाजिक बराबरी, गरिमा एवं समान अवसर प्रदान किये जाएंगे। कुछ दिनों तक यह भी चर्चा का विषय था कि संविधान में प्रस्तावित इन बातों की कोई संवैधानिक बाध्यता नहीं है। परंतु उच्च न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण निर्णय में (केशवानंद भारतीय बनाम केरल राज्य 1973 उच्चतम न्यायालय) ने यह निर्णय दिया कि प्रस्तावना संविधान का अंग है। इसी प्रकार से समाज के वंचित, कमजोर, दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्गों, महिलाओं, अल्पसंख्यकों, बच्चों से संबंधित बहुत सी बातें संविधान के निर्देशक तत्व के रूप में रखी गई हैं। उच्चतम न्यायालय ने अब इसको संविधान के अंग के रूप में स्वीकार कर लिया है।

सच बात तो यह है कि बहुत सारे मानवीय मूल्य और आदर्श

प्रजातंत्र की ही देन है। हर स्वतंत्र देश में वहां के नागरिकों को स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा व आत्मसम्मान के मौलिक अधिकार प्राप्त हैं। हमारे संविधान में इन्हीं आदर्शों और मानवीय मूल्यों को मजबूत करने के उद्देश्य से आरक्षण की व्यवस्था की गई है। प्रश्न यह है कि 'सामाजिक न्याय' क्या है? मेरी राय में सामाजिक न्याय का सीधा अर्थ यह है कि समाज में जिन लोगों को अन्याय, असमानता और भेदभाव का शिकार बनना पड़ा और जिसके कारण वे शोषण के शिकार हुए और जीवन के हर क्षेत्र में वह पिछड़ गए उनको सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक समानता दिलाना और उनको समाज के बड़े हुए वर्गों की बराबरी पर ले आना ही सामाजिक न्याय है। हमारे देश में आदिकाल से ही सामाजिक असमानता रही है। इसकी जड़ में वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था थी। जिसकी वजह से समाज में श्रम करने वाले मेहनत से अपनी रोजी-रोटी कमाने और समाज की प्रगति में योगदान करने वालों को नीच व शूद्र समझा गया। यहां तक कि उन्हें अछूत भी बना दिया गया। उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया गया और उनके लिए शिक्षा, धन-दौलत जमीन प्राप्त करने व समाज में सम्मान प्राप्त करने के दरवाजे बंद कर दिए गए। भगवान बुद्ध ने सामाजिक अन्याय के विरुद्ध अपनी पूरी शक्ति से आंदोलन छेड़ा। हम कह सकते हैं कि उन्होंने ही सर्वप्रथम सामाजिक न्याय का बिगुल बजाया। उनकी यह सशक्त आवाज लगभग ढाई हजार वर्ष पहले उठी थी। वे सामाजिक समता और सामाजिक न्याय के प्रथम प्रहरी थे। बाद में हमारे बहुत से संतों ने भी सामाजिक अन्याय, असमानता और सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ बिगुल बजाया था। ऐसे लोगों में संत कबीर, संत रैदास, स्वामी रामानंद, गुरुनानक और आगे चलकर महात्मा गांधी, महात्मा फुले, नारायण गुरु और बाबा साहब भीमराव अंबेडकर के नाम अगली कतार में आते हैं। एक खास और महत्वपूर्ण है कि इन लोगों ने जहां दलितों, अछूतों व अंधविश्वास से घिरे लोगों की आवाज उठाई वहीं इन लोगों ने महिलाओं के सम्मान, शिक्षा और बराबरी की बात पर भी जोर दिया और उसके लिए ठोस कार्यक्रम बनाए। इनके द्वारा चलाए गए आंदोलनों की दिशा का मूल आधार यह था कि जाति व्यवस्था को समाप्त किए बिना और निर्बल लोगों को सत्ता में भागीदारी दिये बगैर समता मूलक समाज की स्थापना नामुमकिन है। महात्मा गांधी ने तो स्वराज की लड़ाई के बीच ही छुआछूत और जाति व्यवस्था के कुपरिणामों को भलीभांति समझ लिया था इसीलिए गांधी जी ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध आजादी के संघर्ष का नेतृत्व करते हुए छुआछूत के खिलाफ और दलित, पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यकों व महिलाओं के विरुद्ध अन्याय को दूर करना भी अपने कार्यक्रम का अंग बनाया। गांधीजी ने स्वराज की लड़ाई को हर प्रकार के अन्याय के विरुद्ध लड़ाई का स्वरूप दे दिया। उनका मानना था कि सामाजिक स्वराज हासिल करना केवल हमारा लक्ष्य ही नहीं बल्कि संघर्ष की पहली सीढ़ी है। उनका कहना था कि 'हमें सच्चा स्वराज चाहिए जहां आर्थिक व सामाजिक स्वराज हासिल हो सके और समाज में छोटे-बड़े के भेदभाव मिटाकर सबको एक कतार में खड़ा किया जा सके। उन्होंने एक जगह में कहा है कि "मेरे सपनों का स्वराज गरीबों का स्वराज है।" वस्तुतः यही सामाजिक न्याय का सार है।

सामाजिक न्याय के दुश्मन

सामाजिक न्याय का सबसे बड़ा शत्रु वह दर्शन है जो समाज को ऊंच-नीच में बांटता है। अपनी मेहनत से रोटी कमाने वाले को नीच और छोटा समझता है। यह सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक शोषण पर आधारित वह व्यवस्था है जो सत्ता, साधन और अवसर को कुछ लोगों तक सीमित करके उन्हें निहित स्वार्थी वर्ग बना देती है। यह निहित स्वार्थ वर्ग हर समता मूलक आंदोलन को कमजोर करने के लिए उसे तरह-तरह से बदनाम करता है उसके बारे में भ्रामक प्रचार करता है और उसे बांटकर कमजोर करने के हथकंडे अपनाता है। ऐसे लोग हर परिवर्तनकारी शक्ति कानून और कार्यक्रम का विरोध करते हैं। कभी समाचार पत्रों का सहारा लेकर तो कभी न्यायालयों का सहारा लेकर। स्वतंत्रता के बाद ऐसे दर्जनों उदाहरण हैं जैसे—जमींदारी उन्मूलन के खिलाफ न्यायालय का सहारा, हिंदू बिल के खिलाफ न्यायालय का सहारा, बैंकों का राष्ट्रीयकरण करने और राजाओं के वजीफा समाप्त करने के विरुद्ध न्यायालय की शरण लेना, दलित वर्गों व पिछड़े वर्गों के आरक्षण के माध्यम से सरकारी व सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में जीविका का साधन दिलाने के लिए हर प्रकार से विरोध करना।

यहां तक कि हिंसा एवं आत्मदाह का सहारा लेना। यह बात नई नहीं है। ऐसा केवल हमारे देश में ही नहीं होता है। संसार के इतिहास में ऐसे ज्वलंत उदाहरणों की कमी नहीं है, जब सामाजिक न्याय के योद्धाओं को बड़े विरोधों का मुकाबला करना पड़ा है। अमेरिका में गुलामी प्रथा समाप्त करने के लिए राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन को 'सिविल वार' का सामना करना पड़ा। फ्रांस में स्वतंत्रता, समता और भ्रातृत्व के आदर्शों को बुलंद करने वालों को तरह-तरह की यातनाओं के दौर से गुजरना पड़ा। अन्य कई देशों में इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए वर्ग संघर्ष का सहारा लेना पड़ा।

भारतीय समाज, वर्ण व्यवस्था व जाति व्यवस्था से ग्रसित समाज है। इन व्यवस्थाओं के कारण ही हमारा समाज जर्जर हुआ है हमारे मानव संसाधनों और राष्ट्रीय सम्पत्ति का देश को उन्नत और सम्पन्न बनाने में उपयोग नहीं हो सका। समाज में गतिशीलता का अभाव हो गया यद्यपि हमारे जीवन-दर्शन में मानवीय मूल्यों को काफी प्रतिष्ठा दी गई है और हमारे ऋषियों-मुनियों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श को मान्यता दी है। सत्य, अहिंसा, प्रेम को जीवन में उतारने का दावा करने वाला हमारा भारतीय समाज बहुत हद तक ऊंच-नीच, सामाजिक व आर्थिक विषमताओं, शोषण व अंधविश्वास जैसी अमानवीयताओं का शिकार बन गया। समाज सुधारकों के कारण कुछ हद तक इन बुराईयों से मुक्ति तो मिली। मगर समाज समता मूलक नहीं बन पाया। आधुनिक युग में विज्ञान, तकनीकी, संचार साधनों और समाचार सूत्रों ने पूरे संसार में एक सजग मानव को जन्म दिया है। हर प्रकार के अन्याय के खिलाफ चेतना पैदा हुई है। आजादी के अनेक प्रगतिशील व क्रांतिकारी कानून बने। जनहित में नीतियां और कार्यक्रम बनाए गए। निहित स्वार्थों का शिकंजा कमजोर हुआ जिससे समता मूलक समाज बनाने की दिशा में विकास हुआ।

आरक्षण, पिछड़ा वर्ग और सामाजिक न्याय

आरक्षण का प्रावधान भारत के संविधान में उसकी व्यवस्था करने से ही प्रारंभ नहीं होता। वास्तविकता यह है कि दक्षिण भारत में जब दलित वर्गों व पिछड़े वर्गों में शिक्षा का प्रसार हुआ और अनेक युवक-युवतियां सरकारी नौकरी में स्थान पाने के लिए प्रार्थी बने तो भेद-भाव के कारण उनको सरकारी नौकरियों में स्थान नहीं मिला। तब कई प्रमुख समाज सुधारकों एवं सामाजिक व राजनीतिक संगठनों ने आवाज उठायी। फलस्वरूप संविधान लागू होने से पहले मद्रास राज्य में 'कम्युनल जी.ओ.' जारी करके आरक्षण की व्यवस्था की गई। यह कार्यक्रम पहले शिक्षा संस्थाओं में प्रारंभ हुआ, जो इस प्रकार था:

चौदह स्थानों के लिए वितरण का निम्नलिखित स्वरूप बनाया गया—

गैर ब्राह्मण हिन्दू	— 6	पिछड़ा हिन्दू	— 2
ब्राह्मण	— 2	हरिजन	— 2
एंग्लोइंडियन व क्रिश्चयन	— 1	मुस्लिम	— 1

यह व्यवस्था चलती रही, परंतु संविधान बनने के बाद उच्चतम न्यायालय में इस व्यवस्था को चुनौती दी गई और उच्चतम न्यायालय के प्रमुख न्यायाधीश एस.आर. दास ने इस प्रावधान को मौलिक अधिकारों के विरुद्ध भेद-भाव की व्यवस्था मानकर रद्द कर दिया। दलित वर्गों के लिए अलग से मकान बनाने के लिए भूमि अधिग्रहण करने के कानून को बंबई उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई और इसे भी रद्द कर दिया गया। अपने निर्णय में मुख्य न्यायाधीश छागला ने अपना विचार व्यक्त किया कि ऐसा करने के लिए संविधान में संशोधन की आवश्यकता होगी। न्यायालय के इन निर्णयों में ही अंग्रेजी काल से चली आ रही आरक्षण व्यवस्था समाप्त होने के कारण मद्रास राज्य में एक बड़ा आंदोलन खड़ा हो गया। जस्टिस पार्टी और रामा स्वामी पेरियार ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया।

यह बात याद करने योग्य है कि भारत के संविधान में पहला संशोधन 1951 में आरक्षण के प्रश्न पर ही हुआ। संविधान की धारा 15 में उप धारा (4) जोड़ी गई जिसमें यह कहा गया कि यदि सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को उनकी संख्या को देखते हुए सरकारी या सार्वजनिक नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हासिल है तो उनके लिए नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान 'भेदभाव' नहीं माना जायेगा यानी इसे मौलिक अधिकारों के विरुद्ध नहीं समझा जाएगा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि

इस संशोधन को प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने स्वयं पेश किया था, और आर्थिक पिछड़ेपन के संशोधन को अस्वीकार कर दिया।

भारत का संविधान बनाते समय दलित और आदिवासी वर्गों को अनुसूचित श्रेणी में रखा गया और उन्हें अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के नाम से संविधान में सम्मिलित करने की व्यवस्था की गई। उनकी जनसंख्या के आधार पर उन्हें न केवल सरकारी नौकरियों में बल्कि लोकसभा व विधान सभाओं में भी उनके लिए सीटें आरक्षित कर दी गईं। ऐसा करने से इन वर्गों को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक और शिक्षा के क्षेत्रों में काफी हद तक सहूलतें मिलीं। शासन-प्रशासन में भागीदारी और समाज में सम्मान मिला। यद्यपि इनका विशाल बहुमत आज भी गरीबी और अन्याय का शिकार है।

संविधान बनाते समय ही यह महसूस किया गया कि समाज में एक बहुत बड़ा वर्ग और भी ऐसा है जो सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़ा हुआ है। उसकी दशा को सुधारने के लिए, उसे न्याय दिलाने के लिए जरूरी कदम उठाने पड़ेंगे। परंतु दलित व आदिवासी वर्गों की तरह इस वर्ग की पहचान नहीं हो पायी इसलिए संविधान की धारा 340 में यह प्रावधान किया गया कि राष्ट्रपति एक उच्च स्तरीय आयोग बनाएंगे जो इन वर्गों की उन्नति के लिए आवश्यक सिफारिशें करेगा। इसी धारा के अंतर्गत 29 फरवरी 1953 को राष्ट्रपति ने काका कालेलकर की अध्यक्षता में प्रथम 'पिछड़ा वर्ग आयोग' गठित किया जिसने 31 मार्च 1955 को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। आयोग के बनाए गए मापदंड के अनुसार 239 जातियों को पिछड़ी जाति में पहचान की गई। इस आयोग ने पिछड़े वर्गों के लिए प्रथम श्रेणी की नौकरी में 25 प्रतिशत और अन्य श्रेणी में 40 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश करने के साथ-साथ सभी शिक्षा संस्थानों में इन वर्गों के छात्रों के लिए 75 प्रतिशत नौकरी की सिफारिश की गई। परंतु दुर्भाग्य से इस आयोग के प्रतिवेदन पर संसद में भी बहस नहीं हो पायी और यह रद्दी की टोकरी में पड़ा रहा। हां, भारत सरकार के निर्देशानुसार विभिन्न राज्य सरकारों ने अपने यहां सरकारी नौकरियों व शिक्षा संस्थाओं में अलग-अलग ढंग से आरक्षण की व्यवस्था की।

इस बीच पिछड़े वर्गों में असंतोष बढ़ता गया क्योंकि अखिल भारतीय सेवाओं की प्रथम श्रेणी में इन वर्गों का प्रतिनिधित्व 4 प्रतिशत से भी कम था। यद्यपि उनकी आबादी 52 प्रतिशत से भी अधिक है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए 1 जनवरी 1979 को भारत सरकार ने दूसरे पिछड़े वर्ग आयोग का गठन श्री बी. पी. मंडल की अध्यक्षता में किया। जिसने 31 दिसंबर 1980 को अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया। इस आयोग ने बड़े वैज्ञानिक ढंग से पिछड़े वर्गों की पहचान का मापदंड बनाकर राज्यवार उनकी सूची तैयार की। उन्हें उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए 50 प्रतिशत आरक्षण की सीमा को ध्यान में रखकर 27 प्रतिशत आरक्षण देने की सिफारिश की। संसद में मंडल आयोग की रिपोर्ट पर तीन बार विस्तार से चर्चा हुई और यह सहमति बनी कि मंडल आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर लेना चाहिए। परंतु निहित स्वार्थी तत्वों ने उसके खिलाफ हिंसक आंदोलन ही प्रारंभ नहीं किया बल्कि उसके खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में 1990 में रिट पिटीशन भी दाखिल कर दिया। नवंबर 1992 में सुप्रीम कोर्ट के संवैधानिक बेंच ने अपने ऐतिहासिक निर्णय में मंडल आयोग की सिफारिशों को उचित मानते हुए भारत सरकार को निर्देशित किया कि वह उसे प्रभावकारी ढंग से लागू करे। इस निर्णय के बाद पिछड़े वर्गों के आरक्षण का विवादित प्रश्न समाप्त हो गया और अब उसे भारत सरकार लागू कर रही है।

बहुत से लोगों में यह गलतफहमी है कि सामाजिक न्याय और आरक्षण दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सच्चाई यह है कि आरक्षण सामाजिक न्याय की मंजिल का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, स्वयं में मंजिल नहीं है। जिन वर्गों को आरक्षण प्राप्त है इससे उन्हें सत्ता व शासन में भागीदारी प्राप्त हुई है। शिक्षा व समाज में सम्मान अर्जित करने में उन्हें मदद मिली है। समाज के निर्बल वर्गों को प्रशासन में भागीदारी देने के लिए और उनकी सामाजिक व आर्थिक प्रगति के लिए दुनिया के सभी प्रजातांत्रिक देशों ने कदम उठाए हैं। भारत के लिए भी ऐसा करना जरूरी था क्योंकि देश के 85 प्रतिशत लोग आज भी सामाजिक न्याय से वंचित हैं। उन्हें इसके लिए संघर्ष भी करना होगा क्योंकि निहित स्वार्थ के लोग सामाजिक न्याय उपहार में नहीं देंगे।

आज का युग सामाजिक न्याय का युग है। शोषित व पीड़ित वर्गों की उपेक्षा करने से समाज में विद्रोह की भावना पैदा होगी, टकराव पैदा होगा तथा समाज में बंटवारा होगा। परिणामतः देश की प्रगति में बाधाएं उपस्थित हो जाएंगी। सारी कमजोरियों के बावजूद हमारे देश में लोकतंत्र की जड़ें मजबूत है। यद्यपि संक्रमण के युग में अस्थिरता और अनिश्चितता पैदा होती है परंतु इसे सामाजिक, आर्थिक बदलाव की प्रक्रिया का स्वाभाविक हिस्सा मानकर इस स्थिति से समझदारी से निपटना चाहिए। इतिहास ने कांग्रेस पार्टी के ऊपर यह ऐतिहासिक जिम्मेदारी डाली थी कि वह स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व करें। अब इतिहास परिवर्तनकामी शक्तियों के ऊपर यह जिम्मेदारी डाल रहा है कि वह समाज के निर्बल वर्गों, पिछड़े भाइयों एवं बहनों के सामाजिक व आर्थिक जीवन में तेजी से बदलाव लाएं और समता, सम्मान व न्याय की आधारशिला पर एक आधुनिक, संपन्न और मजबूत भारत का निर्माण करें ताकि भारत संसार में एक नयी व्यवस्था के निर्माण में भी अपना योगदान दे सकें। ऐसा करना इसलिए भी जरूरी है कि आज सांप्रदायिकता और जातिवाद के ज़हरीले बादल भारत के भविष्य पर मंडराने लगे हैं।